

Chapter तेईस

ब्राह्मण-पत्नियों को आशीर्वाद

इस अध्याय में इसका वर्णन हुआ है कि ग्वालबालों को भोजन के लिए भिक्षा माँगने के लिए उत्साहित करने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने यज्ञ करने वाले कुछ ब्राह्मणों की पत्नियों पर किस तरह दया दर्शाई और ब्राह्मणों से खेद व्यक्त कराया।

जब ग्वालबालों को अधिक भूख लग गयी तो उन्होंने श्रीकृष्ण से भोजन प्राप्त करने के लिए याचना की। इस पर श्रीकृष्ण ने उन सबों को पास ही यज्ञ कर रहे ब्राह्मणों के एक समूह के पास भोजन माँगने के लिए भेजा। किन्तु इन ब्राह्मणों ने श्रीकृष्ण को कोई सामान्य व्यक्ति समझते हुए बालकों की उपेक्षा कर दी। अतः बालक निराश होकर लौट आये किन्तु भगवान् ने उन्हें यह सलाह देकर फिर से भेजा कि अब वे ब्राह्मणपत्नियों से भोजन माँगें। इन स्त्रियों ने कृष्ण के दिव्य गुणों के विषय में सुन रखा था और उनके प्रति अत्यधिक अनुरक्त थीं। अतः जब उन्होंने यह सुना कि श्रीकृष्ण पास ही हैं, तो वे चार प्रकार के भोजन लेकर फुर्ती से उनके पास गईं। इस तरह उन्होंने अपने आपको श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया।

कृष्ण ने उन स्त्रियों को बतलाया कि कोई भी व्यक्ति मन्दिर में उनके अर्चाविग्रह का दर्शन करके,

उनका ध्यान करके तथा उनके यश का कीर्तन करके उनके प्रति दिव्य प्रेम उत्पन्न कर सकता है। किन्तु यही फल केवल उन्हें अपने समक्ष पाकर प्राप्त नहीं किया जा सकता है। उन्होंने उन्हें सलाह दी कि गृहिणी होने के कारण उनका यह विशेष कर्तव्य है कि अपने पतियों को यज्ञ करने में सहायता दें। इसलिए उन्होंने उन्हें अपने अपने घर लौट जाने का आदेश दिया।

जब ये स्त्रियाँ लौटकर घर गईं तो उनके ब्राह्मण पतियों को तुरन्त पछतावा हुआ और वे कहने लगे, “कृष्ण से शत्रुभाव रखने वाले व्यक्ति के तीन जन्म—वीर्यज, ब्राह्म तथा याज्ञिक—निन्दनीय बन जाते हैं। दूसरी ओर ये स्त्रियाँ हैं, जो ब्राह्मण जाति के संस्कारों के बिना या कोई तपस्या अथवा पवित्र अनुष्ठान किये बिना ही कृष्ण-भक्ति के द्वारा आसानी से मृत्यु के बन्धन से छूट गई हैं। चूँकि कृष्ण की सारी इच्छाएँ पूर्ण रहती हैं (आप्तकाम) अतएव भोजन की भीख माँगना तो हम ब्राह्मणों के प्रति केवल उनकी कृपा है। वैदिक यज्ञ के फल ही क्यों पृथ्वी की सारी वस्तुएँ उन्हीं के ऐश्वर्य हैं, तो भी अज्ञानवश हम इस तथ्य को नहीं समझ पाये।”

ऐसा कहकर सभी ब्राह्मणों ने इस आशा के साथ कि उनके अपराध क्षमा हो सकेंगे भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार किया। फिर भी कंस के भय के कारण वे स्वयं चलकर भगवान् का दर्शन करने नहीं गये।

श्रीगोप ऊचुः

राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिर्हण ।

एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-गोपा: ऊचुः—ग्वालबालों ने कहा; राम राम—हे राम, हे राम; महा-बाहो—हे बलशाली भुजाओं वाले; कृष्ण—हे कृष्ण; दुष्ट—दुष्ट का; निर्हण—दलन करने वाले; एषा—यह; वै—निस्सन्देह; बाधते—कष्ट दे रही है; क्षुत्—भूख; नः—हमें; तत्-शान्तिम्—उसकी शान्ति के लिए; कर्तुम् अर्हथः—तुम्हें करना चाहिए।

ग्वालबालों ने कहा : हे महाबाहु राम, हे दुष्टदलन कृष्ण, हम सब भूख से त्रस्त हैं। इसके लिए आपको कुछ करना चाहिए।

तात्पर्य : ग्वालबालों ने कृष्ण के दुष्टदलन होने का परिहासवश यह अर्थ लगा लिया कि वे उनके खाने का प्रबन्ध करके उनकी भूख शान्त करें। ग्वालों के इस कथन में भगवान् के साथ उनकी प्रेमपूर्ण मैत्री का भाव मिलता है।

श्रीशुक उवाच

इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान्देवकीसुतः ।

भक्ताया विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; विज्ञापितः—सूचित; गोपैः—ग्वालबालों के द्वारा; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकीपुत्र; भक्तायाः—अपने भक्तों को; विप्र-भार्यायाः—ब्राह्मण-पत्नियों को; प्रसीदन्—तुष्ट करने की इच्छा से; इदम्—यह; अब्रवीत्—कहा ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : ग्वालबालों द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर देवकीपुत्र भगवान् ने अपने कुछ भक्तों को जो कि ब्राह्मण पत्नियाँ थीं प्रसन्न करने की इच्छा से इस प्रकार उत्तर दिया ।

प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।

सत्रमाङ्गिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

प्रयात—जाओ; देव-यजनम्—यज्ञशाला तक; ब्राह्मणाः—ब्राह्मणजण; ब्रह्म-वादिनः—वैदिक आदेशों के अनुयायी; सत्रम्—यज्ञ; आङ्गिरसम् नाम—आंगिरस नामक; हि—निस्सन्देह; आसते—इस समय कर रहे हैं; स्वर्ग-काम्यया—स्वर्ग जाने के उद्देश्य से ।

[भगवान् कृष्ण ने कहा] : तुम लोग यज्ञशाला में जाओ जहाँ वैदिक आदेशों में निपुण ब्राह्मणों का एक समूह स्वर्ग जाने की इच्छा से इस समय आंगिरस यज्ञ कर रहा है ।

तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः ।

कीर्तयन्तो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; गत्वा—जाकर; ओदनम्—भोजन; गोपाः—हे ग्वालबालो; याचत—माँगो; अस्मत्—हमारे द्वारा; विसर्जिताः—भेजे गये; कीर्तयन्तः—घोषित करते हुए; भगवतः—भगवान् का; आर्यस्य—ज्येष्ठ; मम—मेरा; च—भी; अभिधाम्—नाम ।

हे ग्वालबालो, तुम वहाँ जाकर कुछ भोजन माँग लाओ। उनसे मेरे बड़े भाई भगवान् बलराम का तथा मेरा भी नाम बतलाना और बताना कि उन्होंने ही हम लोगों को भेजा है ।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने अपने मित्रों को प्रोत्साहित किया कि वे बिना किसी चिन्ता के दान के लिए अनुरोध करें। कहीं वे बालक यह अनुभव न करें कि उन्हें ऐसे सम्माननीय ब्राह्मणों के पास स्वयं जाने का अधिकार नहीं है इस दृष्टि से भगवान् ने उनसे कहा कि बलराम तथा कृष्ण के नामों का उल्लेख कर दें जो भगवान् के पवित्र नाम हैं ।

इत्यादिष्टा भगवता गत्वा याचन्त ते तथा ।
कृताञ्जलिपुटा विप्रान्दण्डवत्पतिता भुवि ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

इति—इन शब्दों द्वारा; आदिष्टः—आज्ञा दिये जाकर; भगवता—भगवान् द्वारा; गत्वा—जाकर; अयाचन्त—माँगा; ते—उन्होंने; तथा—उस तरह से; कृत-अञ्जलि-पुटाः—विनम्रतावश दोनों हाथ जोड़कर; विप्रान्—ब्राह्मणों को; दण्ड-वत्—डण्डे के समान; पतिताः—गिरकर; भुवि—भूमि पर ।

भगवान् से यह आदेश पाकर ग्वालबालों ने वहाँ जाकर निवेदन किया। वे ब्राह्मणों के समक्ष विनयपूर्वक हाथ जोड़कर खड़े रहे और फिर भूमि पर लेटकर उन्हें नमस्कार किया।

हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः ।
प्राप्ताञ्जानीत भद्रं वो गोपान्नो रामचोदितान् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

हे भूमि-देवाः—हे पृथ्वी के देवताओ; शृणुत—सुनिये; कृष्णस्य आदेश—कृष्ण का आदेश; कारिणः—कार्यरूप में परिणत करने वाले; प्राप्तान्—आये हुए; जानीत—जानिये; भद्रम्—कल्याण हो; वः—तुम सबों का; गोपान्—ग्वालबालों को; नः—हम; राम-चोदितान्—राम द्वारा भेजे गये ।

[ग्वालबालों ने कहा] : हे पृथ्वी के देवताओ, कृपया हमारी बात सुनें। हम ग्वालबाल कृष्ण का आदेश लेकर आये हैं और हमें बलराम ने यहाँ भेजा है। हम आपका कल्याण चाहते हैं। आप हमारा आगमन स्वीकार करें।

तात्पर्य : भूमिदेवाः शब्द ब्राह्मणों का द्योतक है क्योंकि इन्हें भगवान् की इच्छा का प्रतिनिधि माना जाता है। कृष्णभावनामृत का दर्शन इस पृथ्वी के मनुष्यों को देवता मानने वाले आदिकालीन बहुदेवतावाद सिद्धान्त का समर्थन नहीं करता। प्रत्युत यह ऐसा विज्ञान है, जो परम सत्य साक्षात् श्रीकृष्ण से आगे बढ़ने वाली सत्ता को निश्चित करता है। भगवान् की सृष्टि के विस्तार के साथ ही ईश्वर की सत्ता और शक्ति का विस्तार होता है और इस पृथ्वी पर उनकी इच्छा तथा सत्ता का प्रतिनिधित्व शुद्ध तथा प्रबुद्ध व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जिन्हें ब्राह्मण कहते हैं।

इस वृत्तान्त से स्पष्ट हो जाता है कि ग्वालबाल जिन कर्मकाण्डी ब्राह्मणों के पास गये थे वे ठीक से प्रबुद्ध नहीं थे और वे कृष्ण तथा बलराम के पद को या उनके अन्तरंग संगियों के पद को नहीं समझते थे। वस्तुतः यह लीला उन तथाकथित बनावटी ब्राह्मणों का पर्दाफाश करती है, जो भगवान् के आज्ञाकारी भक्त नहीं हैं।

गाश्वारयन्तावविदूर ओदनं
 रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ ।
 तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि
 श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

गाः—अपनी गौवें; चारयन्तौ—चराते हुए; अविदूरे—दूर नहीं; ओदनम्—भोजन; राम-अच्युतौ—राम तथा अच्युत; वः—आपसे; लषतः—इच्छुक हैं; बुभुक्षितौ—भूखे होने के कारण; तयोः—उनके लिए; द्विजाः—हे ब्राह्मणो; ओदनम्—भोजन; अर्थिनोः—माँग रहे हैं; यदि—यदि; श्रद्धा—कोई श्रद्धा; च—तथा; वः—आपमें; यच्छत—कृपा करके दें; धर्म-वित्-तमाः—हे धर्म के जानने वालों में श्रेष्ठ।

भगवान् राम तथा भगवान् अच्युत यहाँ से निकट ही अपनी गौवें चरा रहे हैं। वे भूखे हैं और चाहते हैं कि आप उन्हें अपने पास से कुछ भोजन दें। अतः हे ब्राह्मणो, हे धर्म के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ, यदि आपकी श्रद्धा है, तो उनके लिए कुछ भोजन दे दें।

तात्पर्य : ग्वालबालों को ब्राह्मणों की उदारता के बारे में सन्देह था इसलिए उन्होंने बुभुक्षितौ शब्द का प्रयोग किया जिसका अर्थ है कि कृष्ण तथा बलराम दोनों ही भूखे हैं। इन बालकों को आशा थी कि ये ब्राह्मण इस वैदिक आदेश को जानते होंगे—अन्नस्य क्षुधितं पात्रम्—जो कोई भी भूखा हो वह भोजन का दान पाने का पात्र है। किन्तु यदि इन ब्राह्मणों ने कृष्ण तथा बलराम की सत्ता को नहीं माना तो उनकी द्विज उपाधि का अर्थ केवल “दो जनों से उत्पन्न” (द्वि—दो जनों से, ज—उत्पन्न) होगा न कि “दो बार जन्म लिया हुआ।” जब ब्राह्मणों ने ग्वालबालों के पहले अनुरोध को नहीं माना तो उन्होंने ब्राह्मणों को व्यंग्यपूर्ण शब्दों में धर्मवित्तमाः “धर्म के ज्ञाताओं” में श्रेष्ठ कहकर सम्बोधित किया।

दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः ।
 अन्यत्र दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन्दि दुष्यति ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

दीक्षायाः—यज्ञ के लिए दीक्षा से लेकर; पशु-संस्थायाः—पशु यज्ञ तक; सौत्रामण्याः—सौत्रामणि यज्ञ से बाहर; च—तथा; सत्-तमाः—हे विशुद्ध जनों; अन्यत्र—अन्य कहीं; दीक्षितस्य—यज्ञ में दीक्षित व्यक्ति का; अपि—भी; न—नहीं; अन्नम्—भोजन; अश्नन्—खाते हुए; हि—निस्सन्देह; दुष्यति—अपराध होता है।

हे शुद्धतम ब्राह्मणो, यज्ञकर्ता की दीक्षा तथा वास्तविक पशु यज्ञ के मध्य की अवधि को छोड़कर तथा सौत्रामणि के अतिरिक्त अन्य यज्ञों में दीक्षित व्यक्ति के लिए भी भोजन करना

दूषित नहीं है।

तात्पर्य : ग्वालबालों ने इसका पूर्वानुमान कर रखा था कि हो सकता है ये ब्राह्मण उन्हें भोजन न दें क्योंकि स्वयं भी उन्होंने भोजन नहीं किया होगा और जिस पुरोहित को यज्ञ करने के लिए दीक्षा दी जाती है उसे भोजन नहीं करना चाहिए। इसलिए बालकों ने उन ब्राह्मणों से कर्मकाण्डी यज्ञ की विविध औपचारिकताओं का उल्लेख किया। ये ग्वालबाल वैदिक संस्कृति की औपचारिकताओं से अनजान नहीं थे किन्तु उनकी असली मंशा भगवान् कृष्ण की सेवा करना ही थी।

इति ते भगवद्याच्छ्रां शृण्वन्तोऽपि न शृश्रुवुः ।

क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; ते—वे ब्राह्मण; भगवत्—भगवान् का; याच्छ्राम्—निवेदन; शृण्वन्तः—सुनते हुए; अपि—यद्यपि; न शृश्रुवुः—नहीं सुना; क्षुद्र-आशा:—क्षुद्र आशा से पूरित; भूरि-कर्माणः—विस्तृत कर्मकाण्ड में फँसे; बालिशा:—बच्चों जैसे मूर्ख, बचकाना; वृद्ध-मानिनः—अपने को चतुर व्यक्ति मानते हुए।

ब्राह्मणों ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की ओर से किये गये इस निवेदन को सुना। फिर भी उन्होंने इसको अनसुना कर दिया। दरअसल वे क्षुद्र भावनाओं से पूरित थे और विस्तृत कर्मकाण्ड में लगे थे। यद्यपि वे वैदिक ज्ञान में अपने को बढ़ाचढ़ा मान रहे थे किन्तु वास्तव में वे अनुभवविहीन मूर्ख थे।

तात्पर्य : ये बचकाने ब्राह्मण क्षुद्राशाओं से—यथा भौतिक स्वर्ग प्राप्त करने की आशा से—पूर्ण थे। अतः वे कृष्ण के निजी मित्रों के आगमन से प्राप्त होने वाले आध्यात्मिक सुअवसर को नहीं पहचान पाये। आजकल विश्व-भर में लोग भौतिक प्रगति के पीछे दीवाने हैं अतएव वे कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचार कार्यो द्वारा प्रसारित किये जा रहे भगवान् कृष्ण के सन्देश को नहीं सुन सकते। जमाना बदला नहीं और आज भी पृथ्वी पर दम्भी भौतिकतावादी पुरोहित हैं।

देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रत्विजोऽग्नयः ।

देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥ १० ॥

तं ब्रह्म परमं साक्षाद्भगवन्तमधोक्षजम् ।

मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

देशः—स्थान; कालः—समय; पृथक् द्रव्यम्—साज-सामान की विशिष्ट वस्तुएँ; मन्त्र—वैदिक स्तोत्र; तन्त्र—निर्धारित अनुष्ठान; ऋत्विजः—पुरोहित; अग्नयः—यज्ञ की अग्नियाँ; देवताः—अधिष्ठाता देवता; यजमानः—यज्ञ करने वाला; च—तथा; क्रतुः—हवि; धर्मः—सकाम फलों की अदृश्य शक्ति; च—तथा; यत्—जिसको; मयः—बनाने वाले; तम्—उसको; ब्रह्म परमम्—परब्रह्म; साक्षात्—प्रत्यक्ष; भगवन्तम्—भगवान् को; अधोक्षजम्—भौतिक इन्द्रियों से परे; मनुष्य-दृष्ट्या—उन्हें सामान्य व्यक्ति के रूप में देखते हुए; दुष्प्रज्ञाः—विकृत बुद्धि वाले; मर्त्य-आत्मानः—मिथ्या ही भौतिक शरीर के रूप में अपनी पहचान करते हुए; न मेनिरे—ठीक से आदर नहीं दिया।

यद्यपि यज्ञ करने की सारी सामग्री—स्थान, समय, विशेष सामग्री, मंत्र, अनुष्ठान, पुरोहित, अग्नि, देवता, यजमान, हवि तथा अभी तक के देखे गए लाभकारी परिणाम—ये सभी भगवान् के ऐश्वर्य के विविध पक्ष हैं किन्तु ब्राह्मणों ने अपनी विकृत बुद्धि के कारण भगवान् कृष्ण को सामान्य व्यक्ति के रूप में देखा। वे यह न समझ पाये कि वे परब्रह्म हैं, साक्षात् भगवान् हैं, जिन्हें भौतिक इन्द्रियाँ सामान्य रूप से अनुभव नहीं कर पातीं। अतः मर्त्य शरीर से अपनी झूठी पहचान करने से मोहित उन सबों ने भगवान् के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित नहीं किया।

तात्पर्य : कर्मकाण्डी ब्राह्मण यह नहीं समझ पाये कि भगवान् कृष्ण को यज्ञ का भोजन क्यों प्रदान किया जाय जिन्हें वे सामान्य मनुष्य मानते थे। जिस प्रकार गुलाबी रंग का चश्मा लगाने से सारा संसार गुलाबी दिखाई पड़ता है उसी तरह बद्धजीव अपनी संसारी दृष्टि से ईश्वर को भी संसारी रूप में देखता है और इस तरह भगवद्धाम वापस जाने का अवसर अपने हाथ से निकल जाने देता है।

न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परन्तप ।

गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्णरामयोः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ते—वे; यत्—जब; ओम्—“ऐसा ही हो”; इति—इस प्रकार; प्रोचुः—बोले; न—नहीं; न—नहीं; इति—ऐसा; च—या तो; परन्तप—हे शत्रुओं को दण्ड देने वाले परीक्षित महाराज; गोपाः—ग्वालबाल; निराशाः—उत्साहरहित; प्रत्येत्य—लौटकर; तथा—इस प्रकार; ऊचुः—बतलाया; कृष्ण-रामयोः—कृष्ण तथा राम से।

जब वे ब्राह्मण हाँ या ना में भी उत्तर नहीं दे पाये तो हे परन्तप (परीक्षित), सारे ग्वालबाल निराश होकर कृष्ण तथा राम के पास लौट आये और उनको यह बात बतलाई।

तदुपाकर्ण्य भगवान्प्रहस्य जगदीश्वरः ।

व्याजहार पुनर्गोपान्दर्शयन्लौकिकीं गतिम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तत्—उसे; उपाकर्ण्य—सुनकर; भगवान्—भगवान् ने; प्रहस्य—हँसकर; जगत्—ईश्वरः—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नियन्ता; व्याजहार—सम्बोधित किया; पुनः—फिर; गोपान्—ग्वालबालों को; दर्शयन्—दिखलाते हुए; लौकिकीम्—सामान्य जगत का; गतिम्—मार्ग।

जो कुछ हुआ था उसे सुनकर ब्रह्माण्ड के स्वामी भगवान् हँसने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने पुनः ग्वालबालों को इस जगत में जिस तरह लोग कर्म करते हैं उस मार्ग को दिखलाते हुए सम्बोधित किया।

तात्पर्य : अपनी हँसी द्वारा भगवान् कृष्ण ने ग्वालबालों को इंगित किया कि उन्हें कर्मकाण्डी ब्राह्मणों से नाराज नहीं होना चाहिए अपितु यह समझना चाहिए कि माँगने वाले को प्रायः भीख नहीं दी जाती।

मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससङ्कर्षणमागतम् ।

दास्यन्ति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

माम्—मुझको; ज्ञापयत—कृपया घोषित कर दें; पत्नीभ्यः—स्त्रियों को; स-सङ्कर्षणम्—बलराम सहित; आगतम्—आये हुए; दास्यन्ति—वे देंगी; कामम्—इच्छानुसार; अन्नम्—भोजन; वः—तुमको; स्निग्धाः—स्नेहमय; मयि—मुझमें; उषिताः—निवास करते हुए; धिया—अपनी बुद्धि से।

[भगवान् कृष्ण ने कहा] : ब्राह्मणपत्नियों से कहो कि मैं संकर्षण समेत यहाँ आया हूँ। वे अवश्य ही तुम्हें जितना भोजन चाहोगे उतना देंगी क्योंकि वे मेरे प्रति अत्यन्त स्नेहमयी हैं और वे अपनी बुद्धि से मुझमें ही निवास करती हैं।

तात्पर्य : यद्यपि ब्राह्मणपत्नियाँ शरीर से अपने घर में रहती थीं किन्तु उनके मन भगवान् कृष्ण में निवास करते थे क्योंकि वे उनसे उत्कट स्नेह रखती थीं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि भगवान् कृष्ण ने ग्वालबालों को ब्राह्मणपत्नियों से यह बताने के लिए नहीं कहा कि उन्हें भूख लगी थी क्योंकि वे जानते थे कि इन भक्त स्त्रियों को इससे भारी क्लेश पहुँचता। वे तो कृष्ण के प्रति स्नेहवश ही ग्वालबालों को इच्छित भोजन दे देंगी। वे अपने पतियों के निषेध को नहीं मानेंगीं क्योंकि वे अपनी दिव्य बुद्धि से भगवान् के भीतर ही निवास करती थीं।

गत्वाथ पत्नीशालायां दृष्ट्वासीनाः स्वलङ्कृताः ।

नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

गत्वा—जाकर; अथ—तब; पत्नी-शालायाम्—ब्राह्मणपत्नियों के घर में; दृष्ट्वा—उन्हें देखकर; असीनाः—बैठी हुई; सु-अलङ्कृताः—आभूषणों से अच्छी तरह सजी हुई; नत्वा—नमस्कार करने के लिए झुकते हुए; द्विज-सतीः—ब्राह्मणों की सती पत्नियों से; गोपाः—ग्वालबालों ने; प्रश्रिताः—विनयपूर्वक; इदम्—यह; अब्रुवन्—कहा।

तब ग्वालबाल उस घर में गये जहाँ ब्राह्मण पत्नियाँ ठहरी हुई थीं। वहाँ उन बालकों ने उन सती स्त्रियों को सुन्दर आभूषणों से अलंकृत होकर बैठे देखा। बालकों ने ब्राह्मण-पत्नियों को नमस्कार करते हुए विनीत भाव से उन्हें सम्बोधित किया।

नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः ।
इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; वः—तुम; विप्र-पत्नीभ्यः—ब्राह्मणपत्नियों को; निबोधत—कृपया सुनें; वचांसि—शब्द; नः—हमारे; इतः—यहाँ से; अविदूरे—अधिक दूर नहीं; चरता—जा रहे हैं; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; इह—यहाँ; इषिताः—भेजे गये; वयम्—हम (सब)।

[ग्वालबालों ने कहा] : हे विद्वान ब्राह्मणों की पत्नियो, आपको हमारा नमस्कार। कृपया हमारी बात सुनें। हमें भगवान् कृष्ण ने यहाँ भेजा है, जो यहाँ से कुछ ही दूरी से होकर जा रहे हैं।

गाश्चारयन्स गोपालैः सरामो दूरमागतः ।
बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

गाः—गौवों को; चारयन्—चराते हुए; सः—वह; गोपालैः—ग्वालबालों के संग; स-रामः—बलराम के साथ; दूरम्—दूर से; आगतः—आये हैं; बुभुक्षितस्य—भूखे; तस्य—उनके; अन्नम्—भोजन; स-अनुगस्य—अपने साथियों समेत; प्रदीयताम्—दे दें।

वे ग्वालबालों तथा बलराम के साथ गौवें चराते हुए बहुत दूर निकल आये हैं। अब वे भूखे हैं अतएव आप उन्हें तथा उनके साथियों के लिए कुछ भोजन दे दें।

श्रुत्वाच्युतमुपायातं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ।
तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसम्भ्रमाः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; अच्युतम्—कृष्ण को; उपायातम्—पास आया हुआ; नित्यम्—निरन्तर; तत्-दर्शन—उनका दर्शन करने के लिए; उत्सुकाः—उत्सुक; तत्-कथा—उनकी कथा से; आक्षिप्त—मुग्ध; मनसः—उनके मन; बभूवुः—हो गई; जात-सम्भ्रमाः—उत्तेजित, उतावली।

ब्राह्मण पत्नियाँ कृष्ण का दर्शन करने के लिए सदैव उत्सुक रहती थीं क्योंकि उनके मन भगवान् की कथाओं से मुग्ध ही चले थे। अतः ज्योंही उन्होंने सुना कि कृष्ण आये हैं, वे अत्यन्त उतावली हो उठीं।

चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ।
अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

चतुः-विधम्—चार प्रकार के (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य तथा चोष्य); बहु-गुणम्—अनेक स्वाद तथा सुगंध से युक्त; अन्नम्—भोजन; आदाय—लेकर; भाजनैः—बड़े बड़े बर्तनों में; अभिसस्रुः—गई; प्रियम्—अपने प्रियतम की ओर; सर्वाः—वे सभी; समुद्रम्—समुद्र तक; इव—जिस तरह; निम्न-गाः—नदियाँ।

बड़े बड़े पात्रों में उत्तम स्वाद तथा सुगन्ध से पूर्ण चारों प्रकार का भोजन लेकर सारी स्त्रियाँ अपने प्रियतम से मिलने उसी तरह आगे बढ़ चलीं जिस तरह नदियाँ समुद्र की ओर बहती हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की व्याख्या है कि ब्राह्मणपत्नियों को कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव का अनुभव हुआ मानो वे उनके उपपति हों। इसलिए जब वे उन्हें देखने के लिए दौड़ी तो उन्हें रोका नहीं जा सका।

निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः ।
भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुत धृताशयाः ॥ २० ॥
यमुनोपवनेऽशोक नवपल्लवमण्डिते ।
विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

निषिध्यमानाः—मना की गई; पतिभिः—अपने पतियों द्वारा; भ्रातृभिः—अपने भाइयों द्वारा; बन्धुभिः—अन्य सम्बन्धियों द्वारा; सुतैः—तथा अपने पुत्रों द्वारा; भगवति—भगवान् के प्रति; उत्तम-श्लोके—दिव्य स्तुतियों से वंदित; दीर्घ—दीर्घकाल तक; श्रुत—सुनने के कारण; धृत—प्राप्त किया गया; आशयाः—जिनकी आशाएँ; यमुना-उपवने—यमुना के तटीय बगीचे में; अशोक-नव-पल्लव—अशोक वृक्ष की कलियों से; मण्डिते—अलंकृत; विचरन्तम्—घूमते हुए; वृतम्—घिरे हुए; गोपैः—गवालबालों से; स-अग्रजम्—अपने बड़े भाई सहित; ददृशुः—देखा; स्त्रियः—उन स्त्रियों ने।

यद्यपि उनके पतियों, भाइयों, पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियों ने उन्हें जाने से रोका किन्तु कृष्ण के दिव्य गुणों का दीर्घकाल से श्रवण करते रहने से कृष्ण को देखने की उनकी आशा विजयी हुई। उन्होंने यमुना नदी के किनारे अशोक वृक्षों की कोपलों से सुशोभित एक बगीचे में गवालबालों तथा अपने बड़े भाई बलराम के साथ विचरण करते हुए कृष्ण को देख लिया।

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह-
धातुप्रवालनटवेषमनव्रतांसे ।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं
कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

श्यामम्—श्याम वर्ण; हिरण्य—सुनहला; परिधिम्—वस्त्र; वन-माल्य—वनमाला से; बर्ह—मोरपंख; धातु—रंगीन खनिज; प्रवाल—तथा कलियों के गुच्छे; नट—मंच पर नर्तक के समान; वेषम्—वस्त्र धारण किये; अनुव्रत—मित्र के; अंसे—कंधे पर; विन्यस्त—रखे हुए; हस्तम्—अपना हाथ; इतरेण—अन्य हाथ से; धुनानम्—नचाते हुए; अब्जम्—कमल; कर्ण—अपने कान पर; उत्पल—कुमुदिनियाँ; अलक-कपोल—गालों पर बाल बिखराये; मुख-अब्ज—कमल जैसे मुख पर; हासम्—हँसी से युक्त।

उनका रंग श्यामल था और वस्त्र सुनहले थे। वे मोरपंख, रंगीन खनिज, फूल की कलियों का गुच्छा तथा जंगल के फूलों और पत्तियों की वनमाला धारण किये हुए नाटक के नर्तक की भाँति वेश बनाये थे। वे अपना एक हाथ अपने मित्र के कंधे पर रखे थे और दूसरे से कमल का फूल घुमा रहे थे। उनके कानों में कुमुदिनियाँ सुशोभित थीं, उनके बाल गालों पर लटक रहे थे और उनका कमल सदृश मुख हँसी से युक्त था।

प्रायःश्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरै-

यीस्मिन्निमग्नमनसस्तमथाक्षिरन्ध्रैः ।

अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं

प्राज्ञं यथाभिमतयो विजहुनरेन्द्र ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

प्रायः—बारम्बार; श्रुत—सुना गया; प्रिय-तम—अपने सबसे प्यारे का; उदय—कीर्ति; कर्ण-पूरैः—कानों के आभूषण रूप; यस्मिन्—जिसमें; निमग्न—लीन; मनसः—मन; तम्—उन्हें; अथ—तब; अक्षि-रन्ध्रैः—अपनी आँख के छिद्रों से; अन्तः—भीतर; प्रवेश्य—घुसाकर; सु-चिरम्—दीर्घकाल तक; परिरभ्य—आलिंगन करके; तापम्—अपना कष्ट; प्राज्ञम्—अन्तःकरण; यथा—जिस तरह; अभिमतयः—मिथ्या अहंकार के कार्य; विजहुः—त्याग दिया; नर-इन्द्र—हे पुरुषों पर शासन करने वाले राजा।

हे नरेन्द्र, उन ब्राह्मणपत्नियों ने दीर्घकाल से अपने प्रिय कृष्ण के विषय में सुन रखा था और उनका यश उनके कानों का स्थायी आभूषण बन चुका था। उनके मन सदैव उन्हीं में लीन रहते थे। अब उन्होंने अपने नेत्रों के छिद्रों से होकर उन्हें अपने हृदय में प्रविष्ट कर लिया और फिर दीर्घकाल तक अपने हृदय के भीतर उनका आलिंगन करती रहीं। इस तरह अन्ततः उनकी वियोग-पीड़ा उसी प्रकार जाती रही जिस प्रकार कि मुनिगण अपने अन्तःकरण का आलिंगन करने से मिथ्या अहंकार की चिन्ता त्याग देते हैं।

तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदक्षया ।

विज्ञायाखिलदृष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

ता:—वे स्त्रियाँ; तथा—ऐसी दशा में; त्यक्त-सर्व-आशा:—अपनी सारी भौतिक इच्छाएँ त्यागकर; प्राप्ता:—आई हुई; आत्म-दिदक्षया—साक्षात् उन्हें देखने की इच्छा से; विज्ञाय—समझने के लिए; अखिल-दृक्—समस्त प्राणियों की दृष्टि का; द्रष्टा—देखने वाले ने; प्राह—कहा; प्रहसित-आनन:—मुखमंडल पर हँसी लाते हुए।

समस्त प्राणियों के विचारों के साक्षी भगवान् कृष्ण यह समझ गये कि किस तरह अपनी सारी सांसारिक आशाओं का परित्याग करके ये स्त्रियाँ केवल उन्हें ही देखने आई हैं। अतः अपने मुख पर हँसी लाते हुए उनसे उन्होंने इस प्रकार कहा।

स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम् ।

यन्नो दिदक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

सु-आगतम्—स्वागत है; वः—आपका; महा-भागा:—हे भाग्यशालिनी महिलाओ; आस्यताम्—आइये बैठिये; करवाम—कर सकता हूँ; किम्—क्या; यत्—क्योंकि; नः—हमको; दिदक्षया—देखने की इच्छा से; प्राप्ता:—आई हैं; उपपन्नम्—उपयुक्त; इदम्—यह; हि—निश्चय ही; वः—आपको।

[भगवान् कृष्ण ने कहा] : हे परम भाग्यशालिनी महिलाओ, स्वागत है। कृपया आराम से बैठें। मैं आपके लिये क्या कर सकता हूँ? आप मुझे देखने के लिए यहाँ आई यह बहुत ही उपयुक्त है।

तात्पर्य : जिस तरह श्रीकृष्ण ने रात्रि में अपने साथ नाचने के लिए आई हुई गोपियों का स्वागत किया था उसी तरह उन्होंने ब्राह्मणपत्नियों का स्वागत किया जो अनेक व्यवधानों को पार करके भगवान् का दर्शन करने आई थीं जिससे भगवान् के प्रति उनका शुद्ध प्रेम सिद्ध होता था। उपपन्नम् शब्द सूचित करता है कि यद्यपि इन महिलाओं ने अपने पतियों के आदेशों को टुकरा दिया था किन्तु उनका आचरण तनिक भी अनुपयुक्त न था क्योंकि उनके पतियों ने भगवान् कृष्ण के प्रति उनकी प्रेमाभक्ति को बाधित करने का स्पष्ट रूप से प्रयास किया था।

नन्वद्वा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शिनः ।

अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

ननु—निश्चय ही; अद्वा—प्रत्यक्ष; मयि—मुझमें; कुर्वन्ति—करते हैं; कुशलाः—पटु जन; स्व-अर्थ—अपना लाभ; दर्शिनः—देखने वाले; अहैतुकी—बिना कारण के; अव्यवहिताम्—अविच्छिन्न; भक्तिम्—भक्ति; आत्म—आत्मा को; प्रिये—जिसका प्रिय हूँ; यथा—उचित रीति से।

निश्चय ही कुशल लोग, जो अपने असली लाभ को देख सकते हैं, वे मेरी अहैतुकी तथा अविच्छिन्न भक्ति करते हैं क्योंकि मैं आत्मा को सर्वाधिक प्रिय हूँ।

तात्पर्य : भगवान् ने ब्राह्मणपत्नियों को बतलाया कि वे ही नहीं अपितु अपना असली हितभ समझने वाले सारे लोग भगवान् की प्रेमाभक्ति का आश्रय लेते हैं। भगवान् कृष्ण *आत्मप्रिय* हैं अर्थात् हरएक के प्रेम के असली लक्ष्य हैं। यद्यपि हर व्यक्ति की अपनी रुचि तथा अपनी स्वतंत्रता होती है किन्तु अन्ततोगत्वा प्रत्येक जीव भगवान् का आध्यात्मिक स्फुलिंग है। इस तरह हरएक का आदि प्रेम-आकर्षण वैधानिक रूप से भगवान् श्रीकृष्ण के निमित्त है। भगवान् की प्रेमाभक्ति *अहैतुकी* तथा *अव्यवहिता* अर्थात् मनोधर्म, सकाम इच्छाओं अथवा समय एवं परिस्थिति की किसी प्रकार की बाधा से रहित होनी चाहिए।

प्राणबुद्धिमनःस्वात्म दारापत्यधनादयः ।

यत्सम्पर्कात्प्रिया आसंस्ततः को न्वपरः प्रियः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

प्राण—प्राण; बुद्धि—बुद्धि; मनः—मन; स्व—स्वजन; आत्म—शरीर; दार—पत्नी; अपत्य—सन्तान; धन—सम्पत्ति; आदयः—इत्यादि; यत्—जिस (आत्मा) से; सम्पर्कात्—सम्पर्क से; प्रियाः—प्रिय; आसन्—बने हुए हैं; ततः—उसकी अपेक्षा; कः—क्या; नु—निस्सन्देह; अपरः—दूसरा; प्रियः—प्रिय वस्तु।

आत्मा के सम्पर्क से ही जीव का प्राण, बुद्धि, मन, मित्रगण, शरीर, पत्नी, सन्तान, सम्पत्ति इत्यादि उसे प्रिय लगते हैं। अतएव अपने आप से बढ़कर कौन सी वस्तु अधिक प्रिय हो सकती है?

तात्पर्य : इस श्लोक का *यत्सम्पर्कात्* शब्द आत्मा तथा अन्ततः परमात्मा के सम्पर्क का द्योतक है। परमात्मा ही प्रत्येक जीव का मूल है। कृष्णभावनामृत उत्पन्न करने से मनुष्य स्वतः स्वरूपसिद्ध हो जाता है और इस तरह उसकी प्राणशक्ति, बुद्धि, मन, स्वजन, शरीर, परिवार तथा सम्पत्ति—ये सभी कृष्णभावनामृत के प्रभाव से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि कृष्णभावनामृत आत्मा का परमात्मा से अर्थात् शुद्ध चेतना का परम चेतना कृष्ण से सर्वोत्कृष्ट संगम है।

तद्यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः ।

स्वसत्रं पारयिष्यन्ति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतः; यात—जाओ; देव-यजनम्—यज्ञस्थल को; पतयः—पतिगण; वः—तुम्हारे; द्वि-जातयः—ब्राह्मण; स्व-सत्रम्—अपने अपने यज्ञों को; पारयिष्यन्ति—समाप्त कर सकेंगे; युष्माभिः—तुम लोगों के साथ; गृह-मेधिनः—गृहस्थ जन।

अतएव तुम लोग यज्ञस्थल को लौट जाओ क्योंकि तुम्हारे पति, जो कि विद्वान ब्राह्मण हैं,

गृहस्थ हैं और उन्हें अपने अपने यज्ञ सम्पन्न करने के लिए तुम्हारे सहयोग की आवश्यकता है।

श्रीपत्य ऊचुः

मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं खशंसं
सत्यं कुरुष्व निगमं तव पदमूलम् ।
प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदावसृष्टं
केशैर्निवोदुमतिलङ्घ्य समस्तबन्धून् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री-पत्यः ऊचुः—ब्राह्मणपत्नियों ने कहा; मा—नहीं; एवम्—इस तरह; विभो—हे सर्वशक्तिमान; अर्हति—चाहिए; भवान्—आप; गदितुम्—बोलना; नृ-शंसम्—निष्ठुरतापूर्वक; सत्यम्—सत्य; कुरुष्व—कर दीजिये; निगमम्—शास्त्रों में दिये गये वचन; तव—आपके; पाद-मूलम्—चरणकमलों के नीचे; प्राप्ताः—प्राप्त करके; वयम्—हम; तुलसि-दाम—तुलसीदल की माला; पदा—आपके पाँव से; अवसृष्टम्—ठुकराई जाकर; केशैः—हमारे बालों पर; निवोदुम्—ले जाने के लिए; अतिलङ्घ्य—ठुकराकर; समस्त—सभी; बन्धून्—सम्बन्धियों को।

ब्राह्मणपत्नियों ने उत्तर दिया: हे विभो, आप ऐसे कटु वचन न कहें। आपको चाहिए कि आप अपने उस वचन को पूरा करें कि आप अपने भक्तों को सदैव प्रतिदान करते हैं। चूँकि अब हम आपके चरणों को प्राप्त हैं, अतः हम इतना ही चाहती हैं कि हम वन में ही रहती जाएँ जिससे हम तुलसी-दल की उन मालाओं को अपने सिरों पर धारण कर सकें जिन्हें आप उपेक्षापूर्वक अपने चरणकमलों से ठुकरा देते हैं। हम अपने सारे भौतिक सम्बन्ध त्यागने को तैयार हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर ब्राह्मणपत्नियाँ कुछ वैसा ही कह रही हैं जैसाकि गोपियाँ रासनृत्य के प्रारम्भ (भागवत १०.२९.३१) में तब कहती हैं जब कृष्ण उन्हें घर जाने के लिए कहते हैं। इसी श्लोक की तरह गोपियों का भी कथन मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसम् शब्दों से प्रारम्भ होता है।

निगम वैदिक वाङ्मय का द्योतक है, जिसमें कहा गया है कि जो भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, वह इस भौतिक जगत में फिर नहीं आता। इस तरह ब्राह्मणपत्नियों ने भगवान् से याचना की कि चूँकि वे सब उनकी शरण में आई हैं अतएव उन्हें यह शोभा नहीं देता कि वे उन्हें उनके भौतिक पतियों के पास वापस जाने का आदेश दें।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार श्रीकृष्ण ने उन ब्राह्मणपत्नियों से इंगित किया होगा, “तुम लोग उच्च ब्राह्मण कुल की सदस्याँ हो तो फिर तुम एक ग्वालबाल के चरणों में किस तरह शरण पा सकती हो?”

इस पर उन महिलाओं ने उत्तर दिया होगा, “चूँकि हम पहले से ही आपके चरणकमलों की

शरणागत हैं और आपकी सेविका बनना चाहती हैं अतएव हम अपने को तथाकथित ब्राह्मण कुल की सदस्याओं के रूप में मिथ्या पहचान नहीं समझ रहीं। आप हमारे वचनों से आसानी से इसकी पुष्टि कर सकते हैं।”

तब भगवान् कृष्ण ने उत्तर दिया होगा, “मैं तो गोपाल हूँ और मेरी असली सेविकाएँ एवं प्रेमिकाएँ तो गोपियाँ हैं।”

इस पर ब्राह्मणपत्नियों ने उत्तर दिया होगा, “हैं, तो रहने दें। यदि आप अपने सम्बन्धियों के समक्ष ब्राह्मण महिलाओं को दासी बनाते हुए घबड़ा रहे हों तो उन्हें बाहर आने दीजिये। हम आपको उलझन में नहीं डालना चाहतीं। हम आपके गाँव नहीं जायेंगी अपितु वृन्दावन में जंगल के अधिष्ठाता देवों की तरह रहती जाएँगी। हम तो आपसे किञ्चित् सम्बन्ध स्थापित करके अपना जीवन सफल बनाना चाहती हैं।”

इस तरह श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की दिव्य दृष्टि से हम यह जान पाते हैं कि ब्राह्मणपत्नियाँ दूर रहने और कृष्ण के चरणकमलों पर गिरी हुई अथवा आलिंगन करते समय उनकी प्रेमिकाओं के पाँवों तले रौंदी गई तुलसी की पत्तियों को ग्रहण करने के लिए राजी हो गईं। उन्होंने इन तुलसीदलों को अपने सिरों पर धारण करना स्वीकार किया। इस तरह उन्होंने कृष्ण की अन्तरंग सखियाँ या सेविकाएँ बनने की इच्छा (जिसका पूरा होना वे कठिन समझती थीं) त्यागकर वृन्दावन के जंगल में रहते जाने की याचना की। यदि तब कृष्ण उनसे पूछते, “तुम्हारे परिवार वाले क्या कहेंगे” तो वे उत्तर देतीं, “हमने तो अपने तथाकथित सम्बन्धियों की पहले ही परवाह नहीं की क्योंकि हम आपका साक्षात् दर्शन कर रही हैं।”

गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुता वा
 न भ्रातृबन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये ।
 तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो
 नान्या भवेद्गतिरिन्दम तद्विधेहि ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

गृह्णन्ति—वे स्वीकार करेंगे; नः—हमको; न—नहीं; पतयः—हमारे पति; पितरौ—माता-पिता; सुताः—पुत्र; वा—अथवा; न—नहीं; भ्रातृ—भाई; बन्धु—अन्य सम्बन्धी; सुहृदः—तथा मित्रगण; कुतः—तो कैसे; एव—निस्सन्देह; च—तथा; अन्ये—अन्य लोग; तस्मात्—अतएव; भवत्—आपके; प्रपदयोः—आपके चरणकमलों पर; पतित—गिरे हुए; आत्मनाम्—जिनके

शरीर; नः—हमारे लिए; न—नहीं; अन्या—अन्य कोई; भवेत्—हो सकता है; गतिः—गन्तव्य; अरिम्-दम—हे शत्रुओं के दमनकर्ता; तत्—वह; विधेहि—हमें प्रदान करें।

अब हमारे पति, माता-पिता, पुत्र, भाई, अन्य सम्बन्धी तथा मित्र हमें वापस नहीं लेंगे और अन्य कोई हमें किस तरह शरण देने को तैयार हो सकेगा? क्योंकि अब हमने अपने आपको आपके चरणकमलों पर पटक दिया है और हमारे कोई अन्य गन्तव्य नहीं है अतएव हे अरिन्दम, हमारी इच्छापूरी कीजिये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस प्रकार टीका की है : “ब्राह्मणपत्नियों ने अपनी युवावस्था से ही वृन्दावन की स्त्रियों के मुख से भगवान् कृष्ण के रूप, गुण तथा माधुर्य का वर्णन सुन रखा था। मालिनियों, तम्बोलिनियों तथा अन्यो से भी सुना था। अतः उन्हें कृष्ण के प्रति भावमय प्रेम (रति) का अनुभव होता था और वे गृहकार्यों से अन्यमनस्क रहती थीं। उनके पति उन्हें इस तरह निठल्ली देखकर सन्देह करते थे और उनसे बातचीत करने से कतराते रहते थे। अब ये ब्राह्मणपत्नियाँ अपने तथाकथित परिवारों तथा पड़ोसियों का नियमित रूप से बहिष्कार करने को सन्नद्ध थीं और अति क्षोभ के कारण वे कृष्ण के चरणकमलों पर अपने सिर रख रखकर चिख रही थीं और उन्हें नमस्कार कर रही थीं। इस तरह अवरुद्ध वाणी से उन्होंने उपर्युक्त श्लोक कहा। उन्होंने कृष्ण से प्रार्थना की कि वे उन्हें आशीर्वाद दें कि वे ही उनके एकमात्र गन्तव्य हों और अरिन्दम होने के कारण उनके शत्रुओं का—उन तमाम बाधाओं का—दमन कर दें जो कृष्ण को प्राप्त करने में बाधक थीं।

ब्राह्मणपत्नियाँ एकमात्र कृष्ण की सेवा करना चाहती थीं और भगवान् के भावमय प्रेम में यही शुद्ध कृष्णभावनामृत है।

श्रीभगवानुवाच

पतयो नाभ्यसूयेरन्पितृभ्रातृसुतादयः ।
लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; पतयः—तुम्हारे पति; न अभ्यसूयेरन्—शत्रुता का अनुभव नहीं करेंगे; पितृ-भ्रातृ-सुत-आदयः—तुम्हारे पिता, भाई, पुत्र इत्यादि; लोकाः—सामान्य लोग; च—भी; वः—तुम्हारी ओर; मया—मेरे द्वारा; उपेताः—उपदेश दिये गये; देवाः—देवतागण; अपि—भी; अनुमन्वते—सही ढंग से मानते हैं।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने उत्तर दिया: तुम यह विश्वास करो कि न तो तुम्हारे पतिगण तुम लोगों के प्रति शत्रुभाव रखेंगे न ही तुम्हारे पिता, भाई, पुत्र, अन्य सम्बन्धीजन या आम जनता। मैं

स्वयं उन्हें सारी स्थिति समझा दूँगा। यहाँ तक कि देवतागण भी अपना अनुमोदन व्यक्त करेंगे।

न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यङ्गसङ्गो नृणामिह ।
तन्मनो मयि युञ्जाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; प्रीतये—संतोष के लिए; अनुरागाय—अनुराग के लिए; हि—निश्चय ही; अङ्ग-सङ्गः—शारीरिक मिलन; नृणाम्—लोगों के लिए; इह—इस जगत में; तत्—इसलिए; मनः—तुम्हारे मन; मयि—मुझपर; युञ्जानाः—स्थिर करके; अचिरात्—शीघ्र ही; माम्—मुझको; अवाप्स्यथ—प्राप्त करोगी।

तुम सबों का मेरे शारीरिक सान्निध्य में रहना निश्चय ही इस जगत के लोगों को अच्छा नहीं लगेगा, न ही इस प्रकार से तुम मेरे प्रति अपने प्रेम को ही बढ़ा सकोगी। तुम्हें चाहिए कि तुम अपने मन को मुझपर स्थिर करो और इस तरह शीघ्र ही तुम मुझे पा सकोगी।

तात्पर्य : भगवान् ने संकेत किया कि सामान्य लोग नहीं चाहेंगे कि ऊपरी तौर पर ग्वालबाल प्रतीत होने वाले श्रीकृष्ण तथा ब्राह्मण समुदाय की स्त्रियों के बीच ऐसा प्रेमाचार हो। साथ ही वियोग में ब्राह्मणपत्नियों की भक्ति तथा प्रेम में काफी वृद्धि हो जायेगी। दूसरे शब्दों में, यदि वे अपने मन को कृष्ण में स्थिर रहने दें तो बहुत अच्छा रहेगा क्योंकि यह विधि जिसको वे अभी तक अपनाए चली आ रही हैं, आजीवन चलती रहेगी। भगवान् तथा उनका प्रामाणिक प्रतिनिधि, आध्यात्मिक गुरु, भगवान् के भक्तों को पटुता से विविध प्रकार की सेवाओं में लगाते हैं जिससे वे शीघ्र ही उनके चरणकमलों में वापस लौट सकें।

श्रवणाद्दर्शनाद्भ्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ।
न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

श्रवणात्—सुनने से; दर्शनात्—अर्चाविग्रह के स्वरूप का दर्शन करने से; ध्यानात्—ध्यान करने से; मयि—मेरे लिए; भावः—प्रेम; अनुकीर्तनात्—मेरे नाम तथा गुणों का कीर्तन करने से; न—नहीं; तथा—उसी तरह से; सन्निकर्षेण—निकट रहने से; प्रतियात—लौट जाओ; ततः—अतएव; गृहान्—अपने घरों को।

मेरे विषय में सुनने, मेरे अर्चाविग्रह स्वरूप का दर्शन करने, मेरा ध्यान धरने तथा मेरे नामों एवं महिमाओं का कीर्तन करने से ही मेरे प्रति प्रेम बढ़ता है, भौतिक सान्निध्य से नहीं। अतएव तुम लोग अपने घरों को लौट जाओ।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वा द्विजपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः ।

ते चानसूयवस्ताभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इन वचनों से; उक्त्वाः—कहे गये; द्विज-पत्न्यः—ब्राह्मणपत्नियों से; ताः—वे; यज्ञ-वाटम्—यज्ञस्थल को; पुनः—फिर; गताः—चली गई; ते—वे, उनके पतिगण; च—तथा; अनसूयवः—शत्रुभाव रहित; ताभिः—उन; स्त्रीभिः—स्त्रियों के साथ; सत्रम्—यज्ञ का सम्पन्न होना; अपारयन्—पूरा किया।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह आज्ञा पाकर ब्राह्मणपत्नियाँ यज्ञस्थल पर लौट गईं। ब्राह्मणों ने अपनी पत्नियों में कोई दोष नहीं निकाला और उन्होंने उनके साथ साथ यज्ञ पूरा किया।

तात्पर्य : ब्राह्मणपत्नियों ने भगवान् कृष्ण के आदेश का पालन किया और वे अपने पतियों के यज्ञस्थल को लौट गईं लेकिन गोपियाँ कृष्ण द्वारा आदेश दिये जाने पर भी उनके साथ पूनम की रात में नृत्य करने के लिए वन में रहती रहीं। गोपियाँ तथा ब्राह्मणपत्नियाँ—दोनों ने ही शुद्ध भगवत्प्रेम प्राप्त किया।

तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथाश्रुतम् ।

हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; एका—उनमें से एक ने; विधृता—बलपूर्वक रोकी गई; भर्त्रा—पति द्वारा; भगवन्तम्—भगवान् को; यथा-श्रुतम्—जैसा उसने अन्यो से सुन रखा था; हृदा—अपने हृदय में; उपगुह्य—आलिंगन करके; विजहौ—त्याग दिया; देहम्—अपना शरीर; कर्म-अनुबन्धनम्—जो भवबन्धन का कारण है।

उनमें से एक महिला को उसके पति ने जबरदस्ती रोक रखा था। जब उसने अन्यो के मुख से भगवान् कृष्ण का वर्णन सुना तो उसने अपने हृदय के भीतर उनका आलिंगन किया और अपना वह भौतिक शरीर त्याग दिया जो भवबन्धन का कारण है।

तात्पर्य : यहाँ पर वर्णित महिला कृष्ण के प्रति विशेष रूप से समर्पित थी। उसने अपना भौतिक शरीर त्यागते ही आध्यात्मिक शरीर प्राप्त किया और यज्ञस्थल छोड़कर भगवान् से जा मिली।

भगवानपि गोविन्दस्तेनैवान्नेन गोपकान् ।

चतुर्विधेनाशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; अपि—भी; गोविन्दः—गोविन्द; तेन—उस; एव—उसी; अन्नेन—भोजन से; गोपकान्—ग्वालबालों को; चतुः-विधेन—चार प्रकार का; अशयित्वा—खिलाकर; स्वयम्—स्वयं, खुद; च—तथा; बुभुजे—खाया; प्रभुः—सर्वशक्तिमान् ने।

भगवान् गोविन्द ने ग्वालबालों को वह चार प्रकार का भोजन कराया। तत्पश्चात् सर्वशक्तिमान् भगवान् ने भी उन व्यंजनों को खाया।

एवं लीलानरवपुखर्लोकमनुशीलयन् ।

रेमे गोगोपगोपीनां रमयन्नूपवाकृतैः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; लीला—लीलाओं के लिए; नर—मनुष्य रूप में; वपुः—दिव्य शरीरधारी; नृ-लोकम्—मानव समाज का; अनुशीलयन्—अनुकरण करते; रेमे—आनन्द लिया; गो—गौवें; गोप—ग्वालबाल; गोपीनाम्—गोपियों को; रमयन्—प्रसन्न करते हुए; रूप—अपने सौन्दर्य; वाक्—वाणी; कृतैः—तथा कर्मों से।

इस तरह अपनी लीलाएँ सम्पन्न करने के लिए मनुष्य रूप में प्रकट होकर भगवान् ने मानव समाज की रीतियों का अनुकरण किया। उन्होंने अपनी गौवों, ग्वालमित्रों तथा गोपियों को अपने सौन्दर्य, वाणी तथा कर्मों से प्रमुदित करते हुए आनन्द भोग किया।

अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन्कृतागसः ।

यद्विश्वेश्वरयोर्याच्चामहन्म नृविडम्बयोः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; अनुस्मृत्य—होश में आने पर; विप्राः—ब्राह्मणगण; ते—वे; अन्वतप्यन्—पछताने लगे; कृत-अगसः—अपराध किये जाने पर; यत्—क्योंकि; विश्व-ईश्वरयोः—ब्रह्माण्ड के दो स्वामियों, कृष्ण तथा बलराम की; याच्चाम्—याचना का; अहन्म—हमने उल्लंघन किया; नृ-विडम्बयोः—मनुष्य के छद्मवेश में प्रकट होने वालों का।

तब ब्राह्मणों को चेत हुआ और वे बहुत अत्यधिक पछताने लगे। उन्होंने सोचा, “हमसे बहुत पाप हुआ है क्योंकि हमने सामान्य मनुष्य के वेश में प्रकट हुए ब्रह्माण्ड के दो स्वामियों की याचना अस्वीकार कर दी है।”

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण तथा भगवान् बलराम ने ब्राह्मणों को छलने का प्रयास नहीं किया—उन्होंने उनसे सीधे भोजन की याचना की। प्रत्युत ब्राह्मणों ने अपने आपको धोखा दिया जैसाकि नृविडम्बयोः शब्द से सूचित होता है, जिसका अर्थ है कि कृष्ण और बलराम ऐसे सामान्य मनुष्य के लिए मोहित हैं, जो उनको भी एक सामान्य व्यक्ति समझता है। तो भी, चूँकि ब्राह्मणपत्नियाँ भगवान् की परम भक्त थीं, इसलिए मूर्ख ब्राह्मणों को आध्यात्मिक लाभ हुआ और अन्त में उन्हें चेत हो गया।

दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ।
आत्मानं च तथा हीनमनुत्पत्ता व्यगर्हयन् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; स्त्रीणाम्—अपनी पत्नियों की; भगवति—भगवान्; कृष्णे—कृष्ण में; भक्तिम्—शुद्ध भक्ति को; अलौकिकीम्—अलौकिक; आत्मानम्—अपने आपको; च—तथा; तथा—उससे; हीनम्—विहीन; अनुत्पत्ताः—पछतावा करते हुए; व्यगर्हयन्—अपने आपको धिक्कारा ।

अपनी पत्नियों की पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के प्रति दिव्य भक्ति और अपने को उस भक्ति से विहीन देखकर उन ब्राह्मणों को अतीव खेद हुआ और वे अपने आपको धिक्कारने लगे ।

धिग्जन्म नस्त्रिवृद्यत्तद्विग्रतं धिग्बहुज्ञताम् ।
धिक्कुलं धिक्क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

धिक्—धिक्कार है; जन्म—जन्म; नः—हमारा; त्रि-वृत्—तिबारा (पहला माता-पिता से, फिर ब्राह्मण दीक्षा द्वारा तथा तीसरा वैदिक यज्ञ करते समय दीक्षा द्वारा); यत् तत्—जो भी; धिक्—धिक्कार है; व्रतम्—हमारे (ब्रह्मचर्य) व्रत को; धिक्—धिक्कार है; बहु-ज्ञताम्—अपार विद्वत्ता को; धिक्—धिक्कार है; कुलम्—हमारे उच्च वंश को (कुलीनता); धिक्—धिक्कार है; क्रिया-दाक्ष्यम्—कर्मकाण्ड में हमारी दक्षता को; विमुखः—वैरी; ये—जो; तु—फिर भी; अधोक्षजे—भगवान् में ।

[ब्राह्मणों ने कहा] : “धिक्कार है हमारे तिबारा जन्म को, हमारे ब्रह्मचर्य तथा हमारी विपुल विद्वत्ता को, धिक्कार है हमारे उच्च कुल तथा यज्ञ-अनुष्ठान में हमारी निपुणता को! इन सबको धिक्कार है क्योंकि हम भगवान् से विमुख हैं।”

तात्पर्य : ऊपर दी गई परिभाषाओं के अनुसार त्रिविद् जन्म तीन बार जन्म का द्योतक है—
(१) शारीरिक जन्म (२) ब्राह्मण दीक्षा (३) वैदिक यज्ञ करने के लिए दीक्षा । परब्रह्म भगवान् कृष्ण से अनजान रहने पर यह सब व्यर्थ है ।

नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ।
यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थं मुह्यामहे द्विजाः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

नूनम्—निस्सन्देह; भगवतः—भगवान् की; माया—मोहिनीशक्ति; योगिनाम्—बड़े बड़े योगियों को; अपि—भी; मोहिनी—मोहित कर लेती है; यत्—चूँकि; वयम्—हम; गुरवः—गुरु; नृणाम्—समाज के; स्व-अर्थ—अपने सच्चे हित के लिए; मुह्यामहे—मोहित हो गये हैं; द्विजाः—ब्राह्मणगण ।

भगवान् की मायाशक्ति बड़े बड़े योगियों को मोह लेती है, तो हमारी क्या बिसात! ब्राह्मण होने के नाते हम सभी जाति के लोगों के आध्यात्मिक गुरु माने जाते हैं फिर भी हम अपने सच्चे स्वार्थ के बारे में मोहित हो गये हैं ।

अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ ।

दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान्गृहाभिधान् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

अहो पश्यत—देखो तो सही; नारीणाम्—इन स्त्रियों की; अपि—भी; कृष्णे—भगवान् कृष्ण में; जगद्-गुरौ—सकल ब्रह्माण्ड के गुरु; दुरन्त—असीम; भावम्—भक्ति; यः—जिसने; अविध्यत्—तोड़ डाला है; मृत्यु—मृत्यु के; पाशान्—बन्धनों को; गृह-अभिधान्—गृहस्थ जीवन के नाम से विख्यात्।

जरा इन स्त्रियों के असीम प्रेम को तो देखो जो इन्होंने अखिल विश्व के आध्यात्मिक गुरु भगवान् के प्रति उत्पन्न कर रखा है। इस प्रेम ने गृहस्थ जीवन के प्रति उनकी आसक्ति—मृत्यु के बन्धन—को छिन्न कर दिया है।

तात्पर्य : एक तरह पति, पिता, ससुर इत्यादि उन महिलाओं के गुरु या शिक्षक थे किन्तु वे स्त्रियाँ कृष्ण-भक्ति में पूर्ण हो चुकी थीं जबकि पुरुष अज्ञान के गर्त में गिर चुके थे।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार घर लौटने पर इन महिलाओं में दिव्य भावों के लक्षण प्रकट होने लगे—यथा शरीर कम्प, अश्रुपात, रोमांच, विवर्णता, “मेरे जीवन के आनन्दरूप कृष्ण” कहकर प्रलाप, गला रूंधना इत्यादि।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर यहाँ तक कह डालते हैं कि कोई भले ही यह विरोध करे कि अपने पति के अतिरिक्त स्त्री को अन्य किसी पुरुष से प्रेम करना उचित नहीं किन्तु यहाँ तो पतिगण ही यह इंगित कर रहे हैं कि वे जगद्गुरु कृष्ण के बनावटी गुरु हैं, जो सारे ब्रह्माण्ड के शिक्षक और आध्यात्मिक गुरु हैं। पतियों ने देखा कि उनकी पत्नियों में कृष्ण के प्रति दिव्य अनुराग के कारण घर, पति, सन्तान इत्यादि के लिए रंच-भर भी अनुरक्ति नहीं रह गई है। इसलिए उसी दिन से उन पतियों ने उन स्त्रियों को अपना आध्यात्मिक पूज्य गुरु मान लिया और उन्हें पत्नियों या सम्पत्ति के रूप में मानना बन्द कर दिया।

नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ।

न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥ ४३ ॥

तथापि ह्युत्तमःश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ।

भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

न—न तो; आसाम्—इनका; द्विजाति-संस्कारः—समाज के द्विज कहलाने वाले वर्ग के संस्कार; न—न; निवासः—निवास; गुरौ—गुरु के आश्रम में (अर्थात् ब्रह्मचारी रूप में प्रशिक्षण); अपि—भी; न—न तो; तपः—तपस्या; न—न; आत्म-मीमांसा—आत्मा की वास्तविकता के विषय में दार्शनिक जिज्ञासा; न—नहीं; शौचम्—स्वच्छता का अनुष्ठान; न—नहीं; क्रियाः—कर्मकाण्ड; शुभाः—शुभ; तथा अपि—फिर भी; हि—निस्सन्देह; उत्तमः—श्लोके—जिनका यशोगान उच्च कोटि के वैदिक मंत्रों द्वारा किया जाता है; कृष्णे—कृष्ण के लिए; योग-ईश्वर-ईश्वरे—योग के समस्त स्वामियों का परम स्वामी; भक्तिः—शुद्ध भक्ति; दृढा—दृढ़; न—नहीं; च—दूसरी ओर; अस्माकम्—हम सब की; संस्कार-आदि-मताम्—ऐसे संस्कारों इत्यादि वाले; अपि—यद्यपि।

इन स्त्रियों ने न तो द्विजों के शुद्धीकरण संस्कार कराये हैं, न ही किसी आध्यात्मिक गुरु के आश्रम में ब्रह्मचारियों का जीवन बिताया है, न इन्होंने कोई तपस्या की है या आत्मा के विषय में मनन किया है या स्वच्छता की औपचारिकताओं का निर्वाह अथवा पावन अनुष्ठानों में अपने को लगाया है। तो भी इनकी दृढ़ भक्ति उन भगवान् कृष्ण के प्रति है जिनका यशोगान वैदिक मंत्रों द्वारा किया जाता है और जो योगेश्वरों के भी ईश्वर हैं। और दूसरी ओर हम हैं जिन्होंने भगवान् की कोई भक्ति नहीं की यद्यपि हमने इन सारी विधियों को सम्पन्न किया है।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार, पतियों को इसका ज्ञान न था कि उनकी पत्नियाँ कभी कभी वृन्दावनवासियों से, यथा फूल बेचने वाली मालिनियों के मुख से कृष्ण के सौन्दर्य तथा गुणों के विषय में सुनती रहती थी। ये ब्राह्मण अपनी पत्नियों की कृष्ण-भक्ति को देखकर चकित थे। उन्हें इसका पता ही नहीं था कि यह भक्ति भगवान् के शुद्ध भक्तों की संगति में भगवान् के विषय में श्रवण और कीर्तन करने का फल है।

ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया ।

अहो नः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

ननु—निस्सन्देह; स्व-अर्थ—अपने लाभ के विषय में; विमूढानाम्—मोहग्रस्त; प्रमत्तानाम्—प्रमत्तों का; गृह-ईहया—अपने घरेलू प्रयासों से; अहो—ओह; नः—हमको; स्मारयाम् आस—स्मरण दिलाया; गोप-वाक्यैः—ग्वालबालों के शब्दों से; सताम्—दिव्य जीवों का; गतिः—चरम लक्ष्य।

निस्सन्देह हम लोग गृहकार्यों में व्यस्त रहने के कारण अपने जीवन के असली लक्ष्य से पूरी तरह विपथ हो गये हैं। किन्तु अब जरा देखो तो कि भगवान् ने किस तरह इन सीधे-सादे ग्वालबालों के शब्दों से हमें समस्त सच्चे ब्रह्मवादियों के चरम गन्तव्य का स्मरण दिलाया है।

अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्य्याद्यशिषां पतेः ।

ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद्विडम्बनम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

अन्यथा—अन्यथा; पूर्ण—कामस्य—प्रत्येक इच्छा पूरी होने वाले का; कैवल्य—मोक्ष का; आदि—इत्यादि; आशिषाम्—आशीर्वाद; पतेः—स्वामी के; ईशितव्यैः—नियंत्रित किये जाने वालों के साथ; किम्—क्या; अस्माभिः—हमारे साथ; ईशस्य—ईश्वर का; एतत्—यह; विडम्बनम्—बहाना।

अन्यथा पूर्ण काम, मोक्ष तथा दिव्य आशीर्वादों के स्वामी परम नियन्ता हमारे साथ यह विडम्बना क्यों करते? हम तो सदैव उन्हीं के नियंत्रण में रहने के लिए ही हैं।

तात्पर्य : यद्यपि कृष्ण परब्रह्म हैं किन्तु उन्होंने विनीत भाव से अपने ग्वालमित्रों को ब्राह्मणों से भोजन माँगने भेजा। ऐसा करके उन्होंने ब्राह्मणों के अहंभाव की पोल खोली तथा उनकी ही पत्नियों को आकर्षित करके उन्हें अपनी शरण में लेकर अपने ही दिव्य सौन्दर्य के यश की स्थापना की।

हित्वान्यान्भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशयासकृत् ।

स्वात्मदोषापवर्गेण तद्याच्चा जनमोहिनी ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

हित्वा—त्यागकर; अन्यान्—अन्यों को; भजते—पूजती है; यम्—जिस भगवान् को; श्रीः—लक्ष्मीजी; पाद-स्पर्श—जिनके चरणकमलों के स्पर्श हेतु; आशया—आशा के साथ; असकृत्—निरन्तर; स्व-आत्म—अपने से; दोष—त्रुटि; अपवर्गेण—एक ओर करके; तत्—उनकी; याच्चा—याचना; जन—सामान्य लोग; मोहिनी—मोहित करके।

लक्ष्मीजी उनके चरणकमलों का स्पर्श पाने की आशा से सबकुछ एक ओर रखकर तथा अपना गर्व और चंचलता त्यागकर एकमात्र उन्हीं की पूजा करती हैं। ऐसे भगवान् यदि याचना करते हैं, तो यह अवश्य ही सबों को चकित करने वाली बात है।

तात्पर्य : लक्ष्मीजी के परम स्वामी को स्वयं भोजन की याचना नहीं करनी पड़ती जैसाकि यहाँ पर ब्राह्मणों ने संकेत किया है, जो अन्ततः वास्तविक दिव्य बुद्धि प्रकट कर रहे हैं।

देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रत्विजोऽग्नयः ।

देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥ ४८ ॥

स एव भगवान्साक्षाद्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ।

जातो यदुष्वित्याश्रुण्म ह्यपि मूढा न विद्महे ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

देशः—स्थान; कालः—समय; पृथक् द्रव्यम्—साज-सामग्री की विशिष्ट वस्तुएँ; मन्त्र—वैदिक स्तोत्र; तन्त्र—निर्धारित अनुष्ठान; ऋत्विजः—पुरोहित; अग्नयः—तथा यज्ञ की अग्नियाँ; देवता—अधिष्ठाता देवता; यजमानः—यज्ञ करने वाला; च—तथा; क्रतुः—हवि; धर्मः—शुभ फल; यत्—जिसको; मयः—बनाने वाला; सः—वह; एव—निस्सन्देह; भगवान्—भगवान्; साक्षात्—प्रत्यक्ष; विष्णुः—विष्णु; योग-ईश्वर-ईश्वरः—योगेश्वरों के स्वामी ने; जातः—जन्म लिया है; यदुषु—यादव

वंश के; इति—इस प्रकार; आश्रुणम्—हमने सुना है; हि—निश्चय ही; अपि—फिर भी; मूढाः—मूर्ख; न विद्वाहे—हम नहीं जान पाये।

यज्ञ के सारे पक्ष—शुभ स्थान तथा समय, साज-सामग्री की विविध वस्तुएँ, वैदिक मंत्र, अनुष्ठान, पुरोहित तथा यज्ञ की अग्नियाँ, देवता, यज्ञ-अधिष्ठाता, यज्ञ-हवि तथा प्राप्त होने वाले शुभ फल—ये सभी उन्हीं के ऐश्वर्य की अभिव्यक्तियाँ हैं। यद्यपि हमने योगेश्वरों के ईश्वर, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु के विषय में यह सुन रखा था कि उन्होंने यदु वंश में जन्म ले लिया है किन्तु हम इतने मूर्ख थे कि श्रीकृष्ण को साक्षात् भगवान् नहीं समझ पाये।

तस्मै नमो भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उन; नमः—नमस्कार; भगवते—भगवान्; कृष्णाय—श्रीकृष्ण को; अकुण्ठ-मेधसे—जिनकी बुद्धि सीमित नहीं होती; यत्-माया—जिनकी मायाशक्ति से; मोहित—मोहग्रस्त; धियः—मन; भ्रमामः—भटक रहे हैं; कर्म-वर्त्मसु—सकाम कर्म के मार्ग पर।

हम उन भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार करते हैं, जिनकी बुद्धि कभी भी मोहग्रस्त नहीं होती और हम हैं कि मायाशक्ति द्वारा मोहित होकर सकाम कर्म के मार्गों पर भटक रहे हैं।

स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम् ।
अविज्ञतानुभावानां क्षन्तुमर्हत्यतिक्रमम् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निस्सन्देह; नः—हमारा; आद्यः—आदि भगवान्; पुरुषः—परम पुरुष; स्व-माया-मोहित-आत्मनाम्—उनकी माया से मोहग्रस्त मन वालों का; अविज्ञात—न जानने वाले; अनुभावानाम्—उनके प्रभाव का; क्षन्तुम्—क्षमा कर देना; अर्हति—चाहिए; अतिक्रमम्—अपराध को।

हम भगवान् कृष्ण की मायाशक्ति से मोहग्रस्त थे अतएव हम आदि भगवान् के रूप में उनके प्रभाव को नहीं समझ सके। अब हमें आशा है कि वे कृपापूर्वक हमारे अपराध को क्षमा कर देंगे।

इति स्वाधमनुस्मृत्य कृष्णो ते कृतहेलनाः ।
दिदृक्षवो ब्रजमथ कंसाद्धीता न चाचलन् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; स्व-अघम्—अपने अपराध को; अनुस्मृत्य—फिर से स्मरण करके; कृष्णो—कृष्ण के विरुद्ध; ते—वे; कृत-हेलनाः—तिरस्कार प्रदर्शित करने पर; दिदक्षवः—देखने की इच्छा से; ब्रजम्—नन्द महाराज के गाँव; अथ—तब; कंसात्—कंस से; भीताः—डरे हुए; न—नहीं; च—तथा; अचलन्—गये।

इस प्रकार कृष्ण की उपेक्षा करने से उनके द्वारा जो अपराध हुआ था उसका स्मरण करते हुए उनका दर्शन करने के लिए वे अति उत्सुक हो उठे। किन्तु कंस से भयभीत होने के कारण उन्हें ब्रज जाने का साहस नहीं हुआ।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण के विरुद्ध अपने अपराध का अनुभव करते हुए और अन्ततोगत्वा उनके सर्वशक्तिमान पद की प्रशंसा करते हुए ब्राह्मणों ने ब्रज जाकर भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाही। किन्तु उन्हें भय था कि जब कंस के गुप्तचर उसे जाकर यह बतलायेंगे कि वे ब्राह्मण कृष्ण के पास गये थे तो वह उन्हें अवश्य मार डालेगा। ब्राह्मणपत्नियाँ कृष्णभावनामृत में भावमग्न थीं अतः वे येन केन प्रकारेण कृष्ण के पास चली गई थीं जिस तरह गोपियाँ कृष्ण के साथ नृत्य करने के लिए अर्धरात्रि में जंगली पशुओं से भरे जंगल से होकर गई थीं। किन्तु ये ब्राह्मण कृष्णभावनामृत के उस उच्च पद को प्राप्त नहीं थे अतएव कंस के भय से पराजित होकर भगवान् का दर्शन करने नहीं जा सके।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “ब्राह्मण-पत्नियों को आशीर्वाद” नामक तेईसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।